अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना का स्वरूप

आनंद सिह

शोधार्थी, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय वडोदरा, गुजरात

भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में समाज विभिन्न वर्गो, वर्णो, धर्मो और जातियों समुदायों तथा संप्रदायों से संबंधित लोगों के पारस्परिक संबंधों की अत्यंत जटिल लेकिन संयुक्त नाम रहा है यही कारण है कि अनादिकाल से ही हमारे यहाँ इसकी प्रकृति अर्मूत तथा अवधारणा अनुभूतिजन्य रही है। समाज में रहने वाला अर्थात सामाजिक इसका अनुभव कर सकता है, इसमें अंतर्भुक्त संख्यातीत घटकों (सदस्यों, उनके भावाभावो चित्तवृत्तियों क्रिया-व्यापारो, परिवर्तनों आदि) के अस्तित्व का बोध कर सकता है तथा उनके सुख-दु:ख का अनुभव करते हुए यथासमय उनकी यथेष्ठ सहायता भी कर सकती है लेकिन वह इसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार नही कर सकता है। क्योंकि समाज के प्रत्येक सदस्य का समाज द्वारा निर्धारित एक विशेष प्रकार के सामूहिक नियमों, आचरणों आदि से निर्देशित होते हैं इसलिए सामाजिक विसंगतियों की संभावना असंत न्यून हो जाती है। समर्थन, सहयोग तथा विश्वास के आधार पर होने वाले सामाजिकों के आचरण से सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता और उपयोगिता वर्तमान रहती है। दरअसल मनुष्यों के संगठन को बनाए रखने के लिए लोगों में सहयोग की भावना होना अपरिहार्य होता है। लेकिन भवष्य के भावो-विचारों की गतिशीलता समाज के (का स्वरूपको परिवर्तनशीलता का प्रमुख कारण होती है। इसी लिए समाज का कोई एक स्वरूप कभी शाश्वत नहीं रहा, बल्कि उसके सदस्यों को परिवर्तित चित्तवृत्तियों एवं उद्देश्यों के अनुरूप उसकी प्रकृति में समयानुकूल परिवर्तन परिलक्षित होते रहे हैं। यद्यपि समाज के स्वरूप में परिवर्तन का प्रमुख कारण विभिन्न कारणों से भिन्न- भिन्न समयावधियों में जनसमुदाय की परिवर्तित होने वाली मनोवृत्तियाँ अवश्य होती है लेकिन सामाजिक संरचना का अत्यधिक जटिलता इसका स्व स्थान सर्वप्रधान कारण होती है। कबिलाई समाज का संरचनात्मक जटिलता वस्तुत: समाज के स्वरूप को ही परिवर्तित नहीं करती अपित उसके स्वरूप में विविधता का भी अंतर्वेदन करती है। यहाँ सामाजिक संरचना से अभिप्राय प्राय: उन आधारभूत तत्वों के संगठन से होता है जिनके पर्याप्त समुच्चय से समाज का निर्माण होता है। जिस प्रकार से अनेक अंगों-उपांगों के सम्मिलन से शारीरिक संरचना का निर्माण होता है ठीक उसी प्रकार से अगणित धूर्त एवं अमूर्त तथा प्राकृतिक और मानवा-निर्मित वस्तुओं, क्रिया-कलापों, घटनाओं व परिवर्तनों आदि के संयोजन से समाज की संरचना साकार होती है। यह सामाजिक संरचना समाज का एक ऐसा ढाँचा होती है जो संख्यातीत घटकों से मिलकर निर्मित होता है। इन अवयवों में से सामाजिक संरचना विकसित करने के लिए कुछ अवयवों की वर्तमानता तो अपरिहार्य होती है लेकिन कुछ की उपस्थिति आवश्यकताओं पर आश्रित होती है। हालांकि समाज की पूर्णता एवं क्रियाशीलता के लिए इन सभी घटकों की सार्थकता सार्वकालिक होती है। इस समग्र क्रिया-प्रक्रिया में समाज के स्वरूप सामाजिक संरचना के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध पाया जाता है तथा इन दोनों के बीच संबंध प्रतिष्ठापन का कार्य विविध प्रकार के सामाजिक एवं संरचनायक घटकों के द्वारा किया जाता है। भारतीय समाज के संदर्भ में जाति-प्रथा, अस्पृश्यता, वैवाहिक संबंध, पारिवारिक संबंध, संस्कार, मर्यादा, आचरण, नियम- नैतिकताऐं, शून्य व उत्तरदायित्व आदि सामाजिक संरचना के घटक जहाँ समाज के स्वरूप को निर्धारित करते हैं वहीं से संदर्भित समाज का स्वरूप इनकी व्यवस्था का विवेचन करता है, मसलन समाज का सर्वप्रमुख स्वरूप ग्रामीण समाज होता है तथा ग्रामीण समाज की संरचना में अशिक्षा एवं अस्पृश्यता जैसे घटक सम्मिलित होते हैं इसलिए ग्रामीण समाज का नाम लेते ही जहाँ अशिक्षा एवं अस्पृश्यता जैसे अवयव स्वत: ही हमारे समक्ष उपस्थित हो जाते है वही अशिक्षा और अस्पृश्यता की बात करने पर ग्रामीण समाज का परिदृश्य आँखों के सामने नाचने लगता है।

सर्वज्ञात है कि सामाजिक संरचना और समाज के स्वरूप की भाँति ही साहित्य और समाज में भी परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध पाया जाता है। यहाँ भी एक के अभाव में दूसरा स्वत: ही कल्पनातीत या निरर्थक बन जाता है। एक साहित्य का अस्तित्व जहाँ समाज या व्यक्तियों के समूह पर निर्भर होता है वही समाज अथवा व्यक्तियों के मानसिक-वैचारिक विकास के लिए साहित्य की वर्तमानता व उपादेयता भी सर्वसिद्ध है। इन संबंधों के अतिरिक्त साहित्य और समाज के मध्य दर्पण और प्रतिबिम्ब का भी संबंध अंतर्निहित होता है। दर्पण की प्रकृति में साहित्य अपनी रचना के लिए समाज की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों आदि को ही विषयवस्तु बनाता है इसलिए साहित्य-सर्जनाओं में जिन वर्णित - उल्लिखित कथावस्तुएँ सामाजिक परिस्थितियो एवं चित्तवृत्तियो आदि का ही प्रतिबिम्ब होती है। दरअसल किसी भी सर्जक की सफलता और सर्जना की सार्थकता में उसमे अभिव्यक्त देशकाल और वातावरण का आधारित योगदान होता है। रचनाकार अपनी रचनाओं में स्वयं के ही भौतिक और सामाजिक परिवेश के सर्वाधिक समीपस्थ होता है इसलिए उसका साहित्य सृजन कर्म-स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त समाज एवं देशकाल व वातावरण को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण बन जाता है। इन्ही संदर्भो से तथा व भावार्थो में साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। जब यह सुनिश्चित हो गया है कि प्रत्येक देश का साहित्य अपने देशकाल और वातावरण की परिस्थितियों, चित्तवृत्तियो एवं घटना- व्यापारों आदि का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि संबंधित देशकाल और वातावरण की परिस्थितियों मनोवृत्तियों, घटनाओं व परिवर्तनों आदि की प्रकृति के अनुरूप ही रचनाकार की चेतना भी संचारित होगी, क्योंकि वह अपने परिवेश में जो कुछ भी देखेगा अथवा अनुभव करेगा उसी को अपनी सर्जनाओं में अक्षरबद्ध कर देगा। इस आधार पर यदि यह कहा जाए कि समाज की संरचना और स्वरूप के अनुरूप ही साहित्यकार की सामाजिक चेतना की प्रकृति भी होगी तो इसमें किसी तरह की अतिशयोक्ति नही होगी।

कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा के सम्मिलन से नि:श्रत उत्कृष्ट वैचारिकता एवं विशिष्ट रचनाधर्मिता के संयोजक-संरक्षक सामाजिक प्रकृति के समकालीन उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह निवर्तमान शताब्दी के सातवें-आठवें दशक से लेकर अंतिम दशक तक की समयावधि में सर्वाधिक ख्यातिलब्ध साहित्यकार रहे हैं। इन तीन दशकों में उसकी सृजनशीलता साहित्य की विविध विधाओं संबंधी अनेक बहुमूल्य सर्जनात्मक धरोहरें साहित्यिक अधिकोष को समर्पित की हैं। इनकी रचनाएँ बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अंतिम दशको के हिंदी साहित्य रूपी नक्षत्राकाश में टिमटिमाते उस ओर के तारे के समान हैं जो तद्युगीन सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं से प्रादुर्भूत अंधकार को दूर करके व उसकी जड़ता को समाप्त करके उसे चेतनता और गतिशीलता की ओर उन्मुख करने का कार्य करती रही है। इस कार्य की सफलता अपने समाज देशकाल एवं वातावरण के समाज की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, घटनाओं व परिवर्तनों आदि के प्रति सक्रिय रही उनकी सामाजिक चेतना का विशिष्ट योगदान रहा है। अपने बहुआयामी व्यक्तित्व में नैसर्गिकता एवं यथार्थता का अंतर्वेशन करके अपने सृजन-कर्म को नितांत मौलिक, सार्वकालिक प्रासंगिक तथा प्रभावोत्पादक बनाए रखने वाले बिस्मिल्लाह जी अपने उपन्यासों में समकालीन भारतीय समाज ने अपने उपन्यासों में कथानक और देशकाल व वातावरण की प्रकृति में समकालीन भारतीय समाज की परिस्थितियों, प्रवृत्तियो, चित्तवृत्तियो, घटना-परिवर्तनों, संगतियों-विसंगतियों, रूढ़ियों, परम्पराओं तथा मूल्यों आदि को स्वानभूतिजन्य स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसे यदि सरल शब्दों मे कहना हो तो कह सकते हैं कि उनके साहित्य-सृजन काल के आरम्भ होने अथवा परिस्थितियों की बोधगम्यता अर्जित करने से लेकर वर्तमान समय तक उत्तर भारतीय समाज की जो परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ रही हैं, सामाजिक चेतना के स्वरूप मे उन्ही की यथार्थपरक अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में हुई है। इन्ही अभिव्यक्तियों को सम्मिलित रूप से बिस्मिल्लाह जी की सामाजिक चेतना का स्वरूप कहा जा सकता है। कारण यह है कि इनके उपन्यास का अध्ययन करते समय साहित्य के अंतर्मन में उसका सामाजिक वातावरण, उसमें व्याप्त संगतियों-असंगतियों व साधारण जन-जीवन का यथार्थपरक प्रतिबिम्ब सहज ही निर्मित हो जाता है। इसलिए उनके उपन्यासों में गंजायमान सामाजिक चेतना के स्वर को बिना किसी अवरोध या कानों को किसी प्रकार का कष्ट दिए बिना सुनना है तो उनकी युगीन सामाजिक परिस्थितियों की समर्पित बोधगम्यता अपरिहार्य होगी। क्योंकि उनके उपन्यास किन सामाजिक परिस्थितियों में लिखे गए, उस समय की सामाजिक संरचना एवं स्वरूप में क्या परिवर्तन हो, समाज की चित्तवृत्ति कैसी थी- आदि का उचित ज्ञान प्राप्त किए बिना उनके उपन्यासों में सामाजिक चेतना के स्वरूप का अभिज्ञान संभव नहीं होगा।

साहित्य अध्येयताओ और समालोचकों के द्वारा अब्दुल बिस्मिल्लाहजी को सामाजिक प्रकृति का उपन्यासकार स्वीकार किया गया है। कारण यह है कि अपने इनके उपन्यासों में सामाजिक चेतना का स्वर अधिक तीव्रता एवं प्रभावोत्पारकता के साथ मुखरित हुआ है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि बिस्मिल्लाह जी अपने उपन्यासो में अपने देशकाल और सामाजिक वातावरण की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, मनोवृत्तियों व घटना व्यापारों आदि के प्रति सर्वाधि क सजग रहे है और इसी जीवन-क्षेत्र को अपने अधिकांश उपन्यासों के कथानक तथा सहायक कथानक की प्रकृति में प्रयुक्त किए हैं। यद्यपि साहित्यिक देशाटन विगत शताब्दी के सातवें-आठवें दशक से आरम्भ हुआ लेकिन युगबोध के रूप में की बींसवी शताब्दी का समस्त उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी का वर्तमान भी उनसे सम्बद्ध रहा है इसलिए उनके उपन्यासों मे अंतर्यक्त सामाजिक चेतना विवेच्य समयावधि की सामाजिक परिस्थितियों-प्रवृत्तियों से अंतसंबंधि त रही है। ध्यातव्य है कि बिस्मिल्लाह जी का सामाजिक और साहित्यिक जीवन प्रधानत: ग्रामीण समाज एवं उपप्रधानत: नगरीय समाज से संबंधित रहा है इसलिए एतद्विषयक उसकी सामाजिक चेतना समाज के दु:स्वरूपों और संरचनाओं में अंतर्भुक्त संख्यातीत युगीन घटकों की अभिव्यक्ति से संदर्भित रही है। इस दृष्टि से उनके उपन्यासों में सामाजिक चेतना के रूप में उनके उपन्यासों में ग्रामीण समाज की समस्त प्रवृत्तियों-चित्तवृत्तियो, मसलन-अशिक्षा, अस्पृश्यता, जातिगत-वर्णगत भेदभाव पितृसत्तात्मक व्यवस्था, स्त्री-शोषण, अधिकार हनन, पारिवारिक संबंधो रूढ़ियों का निर्देशन, निवर्तन, गरीबी, पारस्परिक सहयोग, सद्‌ध्भाव तथा भाग्यवादिता आदि के अक्षरांकन के साथ-साथ नगरीय समाज की केंद्रीय प्रवृत्तियो परिस्थितियों, दृष्टांतत शिक्षा, जातिगत और वर्णगत विभेद की उपेक्षा, स्त्री-समानता, अन्य संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरुकता, पाश्चात्य जीवन शैली का अंधानकरण तथा कर्मवाद पर विश्वास आदि का के चित्रांकन पर भी केन्द्रित रहे है। ध्यातव्य है कि बिस्मिल्लाह जी के देशकाल और वातावरण की सामाजिक परिस्थितियों व प्रवृत्तियों के रूप यही घटक सामाजिक घटक का सामाजिक युगबोध भी रहे हैं और यदि विगत शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर वर्तमान समय तक की समयावधि पर दृष्टिपात करें तो प्रत्यक्ष स्पष्टत: प्रत्यक्षित होता है कि इस समय के ग्रामीण और नगरीय समाज मे यही सामाजिक अवयव समाजिक प्रवृत्तियों के निर्माणक-निर्धारक रहे हैं अत: यदि समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखे तो बिस्मिल्लाहजी की सामाजिक उपन्यासो में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना अपने युगबोध से सर्वथा संयुक्त दिखाई देती है।

स्वाधीनता के प्राप्ति के अनंतर भारतीय जन-जीवन में सर्वाधिक परिवर्तन मनष्य के सामाजिक पक्ष में ही परिलक्षित हुआ। आजादी के बाद भारतीय उपमहाद्वीप मे पश्चिम की खिड़की से उपहुँची आधनिक एवं पाश्चात्य शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान, सूचना क्रांति और उमर भूमण्डलीकरण की अवधारणा ने ग्रामीण एवं नगरीय प्रमाण की संरचना की ही नहीं बदला आपित इनके प्रभावस्वरुप लोगों की मनोवृत्तियों में भी आमूल-चूल परिवर्तन दृष्टिगोचर हआ। इस नव्य-नूतन परिवर्तन ने केवल पारिवारिक और सामाजिक संबंधों संबंधों के ताने-बाने को ही नहीं बदला अपि मनुष्य को पुरातन विचारों, मान्यताओं, विश्वासों, पएपराओं आदि का विरोधी तथा नवीनता के प्रति आग्रही भी बनाया। यह जन्य चेतन प्रवृत्ति कमोवेश ग्रामीण और नगरीय दोनों समाजों में दिखाई दी। हाँ यह अवश्य था कि पहले से ही शिक्षा और संसाधन संपन्न नगरीय समाज ग्रामीण समाज की समतुल्यता में इस परिवर्तन को अधिक समय शीघ्रता के साथ आत्मसात करने में सफल रहा। अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक चेतना के रूप में समाज में प्रचलित प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, पारिवारिक दशाओं, विघटन की समास्याओं, संयुक्त परिवार की संभावनाओं आदि के वर्णन-विवेचन में इन्ही परिवर्तनो और उसके कारणो को आधार बनाया है। संयुक्त परिवार की परम्परा अनादिकाल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था की बुनियाद रही है लेकिन आयामीकरण, भूमण्डलीकरण, नगरीकरण, यांत्रीकरण, बाजारवाद तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों के विकास के कारण वर्तमान ग्रामीण समाज से संभवत परिवार की प्रथा विज्ञप्त हो गयी है। आज का ग्रामीण और नगरीय समाज दोनों एकाकी परिवार की प्रथा पर प्रधानता वाले बन गए हैं। बिस्मिल्लाहजी के श्समर शेष है' उपन्यास में नायक के पिता का पहले संयुक्त परिवार होता है लेकिन अर्थाभाव के चलते वह धीरे-धीरे विघटित हो जाता है। इसी तरह 'झीनी- झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में सलमा के ससुराल का परिवार भी संयुक्त परिवार ही होता है। इसी तरह 'दंतकथा' उपन्यास में एक परिंदे के द्वारा संयुक्त परिवार की प्रथा की वर्तमान वर्तमान स्थिति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। झीनी- झीनी बीनी चदरिया में 135 चाचा का बेटा हानिए, 'जहरबाद' में पति-पत्नी, 'मुखड़ा क्या देखे' में अली अहमद तथा 'दंतकथा' में

मुर्गे के माध्यम से संयुक्त परिवार के विघटन की समस्याओं को अब उठाया गया है। 'जहरबाद' उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्याओं की ओर भी संकेत किया गया है।

आधुनिक परिवेश में केवल संयुक्त परिवार ही नहीं विघटित हुए हैं अपितु पारिवारिक संबंधों में भी स्वार्थ, स्वार्थपरायणी तथा स्वच्छंद मनोवृत्ति के चलते दरारे बढ़ने लगी है इसलिए पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पुत्र-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहन, सास-बहू, ससुर-दामाद, चाचा-चाची, भाई-भतीजा, देवर-भाभी तथा ननद-भाभी के बीच का अब वही संबंध नही संबंधों की घनिष्ठता और विश्वास दोनो में कभी दिखाई देने लगी है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने पारिवारिक संबंधों में उपजी इस स्वार्थी मनोवृत्ति अत्यंत वैज्ञानिक विवेचन करते हुए सफल और असफल दाम्पत्य संबंधों का वर्णन-विश्लेषण भी किया है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था मे विवाह जैसी सामाजिक संस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, क्योकि इसके माध्यम से स्त्री और पुरुष को यौन-संबंध स्थापित करने का सामाजिक एवं नैतिक अधिकार प्राप्त होता है। लेकिन समय-समय पर इस संस्था में अनेक अवांछित घटक सम्मिलित होते रहे हैं जिनके कारण सामाजिक व्यवस्था में ऐसे विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ पाक जन्म लेती रही हैं। अनमेल विवाह, बहु-विवाह, दहेज प्रथा तथा विवाह-विच्छेद आदि ऐसे ही कारक है जो वैवाहिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को भी प्रभावित करने की पर्याप्त सामर्थ्य रखते है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में समाज के इन अवांछित कारकों पर पर्याप्त दृष्टि डाली गयी है। 'झीनी- झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में लतीफ और रेहाना 'जहरबाद' में अम्मा और अब्बा 'मुखड़ा क्या देखे' मे अशोक कुमार पाण्डे एवं उनकी पत्नी और 'दंतकथा' में मुर्गे का मालिक और उसकी पत्नी के माध्यम से हो अनमेल विवाह की संगतियों-विसंगतियों पर पर्याप्त चर्चा-परिचर्चा की गयी है। इमी प्रकार से 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास का मतीन, 'जहरबाद' उपन्यास में मैं का दादा और अब्बा, 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास कामुख नाऊ बहु-विवाह का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है तो 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में दहेज प्रथा का विरोध तो 'मुखड़ा क्या देखे' में दहेज-प्रथा का समर्थन देखने को मिलता है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में लतीफ और कमरुन की गृहस्थ जीवन की असफलता के कारण विवाह-विच्छेद अर्थात तलाक की समस्या सामने आती है। इसी तरह 'जहरबाद' उपन्यास में मै की अम्मा और अब्बा के बीच भी तलाक की समस्या उत्पन्न होती है।

इस तरह से यदि उपसंहारात्मक प्रकृति में कहे तो कह सकते हैं कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना का स्वरूप प्राय: वह है जो उनके देशकाल और वातावरण के युग बोध से नि:स्तृत होता है। उन्होंने अपने समाज को जब, जैसे और जिस रूप मे देखा उसे अभी रूप में अक्षरों के माध्यम से उपन्यास के स्वरूप में ढाल दिया। उसकी सामाजिक चेतना सही मायनों में उनका युगसत्य ही है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. समर शेष है, अब्दुल बिस्मिल्लाह वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण- 1984
2. झीनी-झीनी बीनी चदरिया, अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1986
3. दंतकथा, अब्दुल बिस्मिल्लाह वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1990
4. मुखड़ा क्या देखें, अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 1996
5. जहरबाद, अब्दुल बिस्मिल्लाह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2016
6. अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा-साहित्य, डॉ० वासीम मकानी चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, संस्करण- 2009
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य में संघर्षरत आम आदमी, डॉ० शेख शरफोद्दीन फक्रोद्दीन, वान्या पब्लिकेशन्स, कानपुर- 2017